तुलसीदास : एक विश्लेषण

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित छः वार्ताओं का संग्रह

नाम



पब्लिकेशन्स डिवीज़न

नवम्बर १९५६

गोस्वामी तुलसीदास पर हिन्दी में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, पर इतना लिखे जाने पर भी और लिखने की गुंजाइश है और कदाचित हमेशा रहेगी। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित ये वार्ताएँ इस ...शा से प्रकाशित की जा रही हैं कि थोड़े में गोस्वामी जी पर सारी ... बातें आ जाती हैं। इस प्रकाशन का उद्देश्य इस विषय की ...ों का स्थान लेना नहीं, बल्कि उनके लिए अभिरुचि ...न करना है।

...ने

नवम्बर १९५६

गोस्वामी तुलसीदास पर हिन्दी में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, पर इतना लिखे जाने पर भी और लिखने की गुंजाइश है और कदाचित हमेशा रहेगी। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित ये वार्ताएँ इस ...शा से प्रकाशित की जा रही हैं कि थोड़े में गोस्वामी जी पर सारी ... बातें आ जाती हैं। इस प्रकाशन का उद्देश्य इस विषय की ...कों का स्थान लेना नहीं, बल्कि उनके लिए अभिरुचि ...न करना है।

ने

तुलसीदास : एक विश्लेषण

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित
छः वार्ताओं का संग्रह

पब्लिकेशन्स डिवीजन
सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय
ओल्ड सेक्रेटेरियट,
दिल्ली-८

विषय-सूची

: १ :

तुलसी का जीवन-वृत्त

गुलाबराय

जंगम तुलसी-तरु लसै आनंद-कानन-खेत,
जाकी कविता-मंजरी, राम-भँवर रस-लेत।

हमारे साहित्य के परम प्रकाशमय ज्योतिर्पिण्ड सूर और तुलसी का जीवन-वृत्त अभी तक अपेक्षाकृत अन्धकार में ही है। यह भक्त कवि थे और भक्त लोग अपने इष्टदेव के व्यक्तित्व के आगे अपना व्यक्तित्व प्रकाश में न आने देना ही श्रेयस्कर समझते थे। भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य और वहिःसाक्ष्य दोनों ही हैं। अन्तःसाक्ष्य में तो स्वयं तुलसीदास जी के ग्रन्थ हैं, और वहिःसाक्ष्य के ग्रन्थों में गोस्वामी गोकुल नाथ जी लिखित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', महात्मा नाभादास जी का 'भक्तमाल', बाबा वेणी माधवदासकृत 'गोसाईं चरित', बाबा रघुबरदास द्वारा प्रणीत 'तुलसी चरित' और प्रियादास जी लिखित 'भक्तमाल की टीका' प्रमुख हैं। इन सभी ग्रन्थों में धार्मिक भाव की प्रधानता है। 'गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' की प्रामाणिकता में भी सन्देह किया जाता है। स्वयं गोस्वामी जी की गवाही पर ही हमको अधिक निर्भर रहना पड़ता है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार तुलसीदास जी, नन्ददास जी के बड़े भाई थे। नन्ददास जी ब्रज में रहते थे और तुलसीदास जी काशी में। नन्ददास जी मूल निवासी ब्रज के ही थे या और कहीं के, इसका पता वार्ता से नहीं लगता। नन्ददास जी के भाई होने की बात 'गोसाईं चरित' से भी पुष्ट होती है। पीछे से तुलसी की ब्रजयात्रा और नन्ददास जी के साथ श्रीनाथ जी के दर्शन को जाने और 'तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुषबाण लेउ हाथ' की बात 'वार्ता' और 'तुलसी चरित' में प्रायः एक सी है।

माता का नाम हुलसी तो अन्तःसाक्ष्य, वहिःसाक्ष्य और जनश्रुति, तीनों से ही पुष्ट होता है :

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी
तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ।

इस सम्बन्ध में रहीम का भी एक दोहार्द्ध प्रसिद्ध है ।

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय !
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय ॥

'गोसाईं चरित' के अनुसार तुलसीदास जी के पिता राजापुर के राजगुरू और सरवार के विप्र थे । 'तुलसी चरित' के हिसाब से उनका नाम मुरारी मिश्र था । मूल निवासी सरवार प्रदेश में मंझौली के कसया ग्राम के थे और राजापुर में बस गये थे ।

इस पुस्तक के हिसाब से तुलसीदास जी के तीन ब्याह हुए थे । तीसरा ब्याह कंचनपुर के लछमन उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ था । इस विवाह में तुलसीदास जी के पिता ने ६,००० रुपये लिए थे । इस ग्रन्थ की घटनाएँ तुलसी के आत्मसाक्ष्य से भी नहीं मिलतीं । तुलसीदासजी के बाल्यकाल का नाम इसमें तुलाराम है और स्वयं उन्होंने राम बोला कहा है । पिता द्वारा ६,००० रुपये लिए जाने की बात 'मात-पिता जग जाहि तज्यो विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई' के विरुद्ध पड़ती है ।

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम था और वे पत्यौजा के दुबे थे : 'तुलसी परासर गोत दुबै पतिऔजा के ।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य लोग भी इनको सरयूपारीण ब्राह्मण मानते हैं और मिश्रबन्धु इनको कान्यकुब्ज मानते थे । पत्यौजा के दुबे कान्यकुब्ज ही होते हों, पर सोरों के पक्षवाले इनको सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं । तुलसीदास जी तो स्वयं इन जातिपांति की सीमाओं से परे थे : 'धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ ।' कवितावली में भी यही बात कही गई है—'मेरे जातिपांति, न चहौं काहू की जातिपांति ।' उन्होंने स्वयं अपने ब्राह्मण होने और सुकुल अर्थात् अच्छे कुल में जन्म लेने की बात कही है । कवितावली में वे कहते हैं : 'जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि भयो परिताप पाप जननी-जनक को ।' 'विनय पत्रिका' में भी उन्होंने लिखा है : 'दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को ।' इन उक्तियों से यह निर्विवाद है कि उनका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था ।

गोस्वामीजी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी भारी मतभेद है। 'गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' दोनों के आधार पर उनको राजापुर का कहा जाता है, किन्तु इन दोनों की प्रामाणिकता में सन्देह है। 'तुलसी चरित' की बातें तो स्वयं तुलसीदास जी के आत्मसाक्ष्य के विरुद्ध पड़ती हैं और 'गोसाईं चरित' में सत्यं शिवं सुन्दरम् के उल्लेख के कारण उसकी नवीनता प्रदर्शित होती है। उसके सम्वत भी अन्य प्रामाणिक सम्वतों से नहीं मिलते।

बांदा के गज़ेटियर में तुलसीदास जी को सोरों से आया हुआ बतलाकर उनके द्वारा राजापुर बसाये जाने की बात लिखी गई है। गज़ेटियर का प्रमाण तो सोरों के पक्ष में ही है। राजापुर के सम्बन्ध में जो एक प्रबल प्रमाण दिया जाता है, वह यह है कि 'रामचरित मानस' में रामचन्द्र जी के प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए जमुना पार करते समय एक तापस के आने का उल्लेख है: 'तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥ कवि अलखित गति वेष विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥' यहाँ तुलसीदास ने कल्पना द्वारा अपने को उस समय श्री रामचन्द्र जी के पास पहुँचा दिया है। सूर ने भी कृष्ण जन्म के प्रसंग में अपने को नन्द जी के घर पहुँचाया है: 'हौं तो तेरे घर को डाढ़ी, सूरदास मेरो नाम।'

इस प्रसंग में जो तापस है, वह तुलसीदास ही हो सकते हैं; किन्तु इससे यही प्रकट होता है कि वहाँ रहने के कारण उनको उस स्थान से मोह था। परन्तु इससे यह निश्चय नहीं हो जाता कि वह उनका जन्म स्थान ही था।

सोरों की सामग्री का मूल आधार है—'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।' सूकर क्षेत्र के सोरों होने का प्रमाण यह है कि वहाँ वाराह जी का मन्दिर है और सोरों के महात्म्य में भी उसे सूकर क्षेत्र कहा गया है। इसके विपरीत आचार्य शुक्ल जी गोंडा जिले में भी एक सूकर क्षेत्र बतलाते हैं। वहाँ की स्थानीय परम्पराओं की जाँच आवश्यक है। वहाँ उनके गुरु नरहरिदास जी का कोई स्थान है या नहीं? सोरों वालों के पास तुलसीदास जी की धर्मपत्नी रत्नावली की दोहावली है। नन्ददास के 'भ्रमर गीत' की एक खण्डित प्रति की पुष्पिका है जिस में तुलसीदास जी को नन्ददास जी का भाई कहा गया है। उनका एक घर मुसलमानों के मुहल्ले में भी बतलाया जाता है। उसके पास एक मस्जिद भी है। वह तुलसीदास जी के 'मांगि के खईबो, मसीत को सोईबो' वाले कथन को वास्तविकता का रूप प्रदान करती है। खैर जो कुछ भी हो, यह एक निष्पक्ष और वैज्ञानिक अध्ययन का विषय है। हर्ष की बात है कि विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है।

तुलसीदास जी के जन्म-सम्वत् के सम्बन्ध में भी मतभेद है। 'गोसाइं चरित' के अनुसार वह १५५४ है: 'पन्द्रह सौ चौवन विषै कालिन्दी के तीर, श्रावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो सरीर ॥' इस हिसाब से 'राम चरित मानस' की रचना का प्रारम्भ उनके सत्तरवें वर्ष में होता है और उनकी आयु १२६ वर्ष की बैठती है। यह आयु एक सदाचारी महत्मा के लिए असम्भव तो नहीं, किन्तु नितान्त सहज सम्भव भी नहीं है। रामगुलाम द्विवेदी आदि विद्वानों ने जन्म सम्वत् १५८९ माना है। इस हिसाब से 'रामचरित मानस' का आरम्भ उनकी बयालीसवें वर्ष की आयु में हुआ जो ऐसी प्रौढ़ रचना प्रारम्भ करने के लिए न बहुत कम थी न बहुत ज्यादा। तुलसीदास जी के माता-पिता ने उनको छोड़ दिया था। जनश्रुति यह है कि उनको अभुक्त मूल में उत्पन्न होने तथा अन्य अशुभ लक्षणों के कारण, जैसे जन्म के समय दाँतों का होना, त्याग दिया गया था। इसके लिए अन्तः साक्ष्य है। विनय-पत्रिका में वे लिखते हैं:

'स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक
औचक उलटि न हेर्यौ'

कवितावली में भी ऐसी ही बात कही गई है:

'मात-पिता जग जाहि तज्यो विधिहू न लिखी कछू भाल भलाई।'

'गोसाइं चरित' के अनुसार गोस्वामी जी की माता ने पिता की उपेक्षा देख उनको मुनिया दासी को सौंप दिया। उसके मर जाने पर और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तुलसीदास जी की बाल्यकालीन कठिनाइयों की अभिव्यंजना उनके ग्रन्थों में अच्छी तरह हुई है:

'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक कौं।'

और सुनिए:—

'जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाए टूक सब के विदित बात दुनी सो।'

उसी अवस्था में उनके गुरु बाबा नरहरिदास की उन पर दया-दृष्टि हो गई। उनके नाम पर श्लेष करते हुए उनको उन्होंने नररूप हरि कहा है: 'बन्दौं गुरु-पद-कंज कृपा-सिन्धु नररूप हरि'। एक और प्रसंग में नरहरि का नाम आया है। लंका में प्रवेश करने से पूर्व हनुमान जी नरहरि का स्मरण

करते हैं : 'मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।' यहाँ पर नरहरि से मतलब तो नरसिंहवतार का ही है किन्तु इस प्रयोग से इतना ही संकेत मिलता है कि तुलसीदास जी को अपने गुरु के नाम से कुछ मोह था।

तुलसीदास जी के वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ मतभेद है। उन्होंने 'विनय पत्रिका' में लिखा है : 'ब्याह न बरेखी, जाति-पांति न चहत हौं।' शायद यह वह समय हो जब वे जाति-पांति और गार्हस्थ्य जीवन के बन्धनों से मुक्त हो गए हों। जनश्रुति के अनुसार उनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। उनके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था जिसकी मृत्यु हो गई। बाबा रघुबरदास के 'तुलसी चरित' के अनुसार इनके तीन विवाह हुए। अन्तिम विवाह लच्छमन उपाध्याय की लड़की बुद्धिमती से हुआ। जो कुछ भी हो तुलसीदास जी को उद्‌बोधन उनकी स्त्री से ही मिला : 'लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ' की बात सभी लोग जानते हैं। फिर तुलसीदास कुछ काल तक पर्यटन करते रहे। वे काशी, अयोध्या, पुरी, रामेश्वरम्, बदरिकाश्रम और मानसरोवर तक गए। फिर चित्रकूट वास करके अयोध्या आए। वहाँ सम्वत् १६३१ में उन्होंने 'रामचरित मानस' लिखना आरम्भ किया :

संवत् सोरह सै इकतीसा, करौं कथा हरिपद धरि सीसा।।
नवमी भौमवार मधु मासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।

ज्योतिष की गणना से सम्वत् सोलह सौ इकत्तीस के चैत्र की नवमी जो मंगलवार को पड़ी थी, वह स्मार्तों की नवमी थी। इसलिए तुलसीदास के स्मार्त-वैष्णव होने का अनुमान किया जाता है। तुलसीदास जी की भाषा में रामायण लिखने से पण्डित मण्डली रुष्ट थी क्योंकि उससे उनकी आजीविका पर आघात पहुँचता था किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने दृढ़तापूर्वक कह दिया : 'का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच।' 'काम जु आवे कामरी का लै करै कमाच।' उनकी कामरी ही कमाच से अधिक मूल्यवान सिद्ध हुई।

तुलसीदास जी का बाल्यकाल गरीबी में बीता किन्तु वृद्धावस्था में उनको पर्याप्त मान मिला। दोहावली में वे कहते हैं :

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पांय।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय।।

वृद्धावस्था में उनका शरीर रोग से जर्जर हो गया था। उन्होंने बाहुवेदना और बलतोड़ का उल्लेख किया है। उन्होंने पीड़ा से परेशान होकर ही लिखा था : 'पाँव पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर, जाजर सकल सरीर पीर मई है।' उन दिनों काशी की दशा अच्छी न थी : 'बासर ढासनि के ढका, रजनी चहु दिस चार।' राज समाज भी कलुषित हो गया था : 'राज-समाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है' और रुद्र बीसी में सम्वत् १६६९ से १६७१ तक रही। उसमें महामारी का कोप हुआ। धर्म में निष्ठा घटी और हेतुवाद बढ़ा। इन सब बातों से वे दुखी थे। गोस्वामी जी के स्वर्गवास की तिथि सर्वमान्य है : 'संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर, श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।' कोई उस तिथि को श्रावण कृष्णा तीज भी कहते हैं। लेकिन उनका यशः शरीर जरा-मरण के भय से परे रहा। भारतवासी उनकी अमर कृतियों के लिए चिरकाल तक ऋणी रहेंगे। नाभा जी ने ठीक ही कहा था :

'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।'

: २ :

तुलसी और भक्ति

रामकुमार वर्मा

तुलसीदास भारतीयता के प्रतीक हैं। उन्होंने भारतीय दर्शन, धर्म और साहित्य की जो प्रतिष्ठा अपनी रचनाओं में की है, वह किसी साहित्यकार द्वारा सम्भव नहीं हो सकी। उन्होंने दर्शन की अनुभूति धर्म को प्रदान की और धर्म की चेतना साहित्य को दी जो वास्तविक मानवता के स्पन्दन से चिरस्थायी हो गया। इस प्रकार तुलसीदास ने दर्शन, धर्म और साहित्य को मानव की श्रेष्ठतम प्रेरणाओं का प्रतीक बना दिया है।

तुलसीदास ने दर्शन और धर्म की सन्धि में भक्ति का रूप सँवारने की चरम प्रतिभा प्रदर्शित की। भक्ति के सहारे एक ओर उन्होंने विशिष्टाद्वैत के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामिन् और अर्चावतार की मान्यताओं को बल दिया और दूसरी ओर उन्होंने शाण्डिल्य भक्ति सूत्र और नारद भक्ति सूत्र की आसक्तियों में हृदय की प्रवृत्तियों को इन्द्रियों के विष से मुक्त किया। इस भांति उन्होंने दर्शन की गम्भीरता और नीरसता को धर्म के विश्वासों से जोड़ कर जीवन का अंग बना दिया, और इस कार्य के लिए भक्ति को ही उन्होंने सबसे अधिक महत्व प्रदान किया।

तुलसीदास की भक्ति एक विशिष्ट कोटि की है। उन्होंने भक्ति का रूप स्थिर करने में बड़ी सतर्कता से काम लिया है। उनके पूर्व सन्त कबीरदास ने भक्ति की व्याख्या में मानसिक प्रेम को प्रधानता देते हुए समस्त आचारों और कर्मकाण्डों का खण्डन किया था और वेद पुराणों की निन्दा की थी। तुलसीदास ने इस ओर संकेत भी किया है :

साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं वेद पुरान॥

सन्त सम्प्रदाय में भक्ति के लिए मूर्ति और अवतार सहायक नहीं, बाधक थे। इस सम्प्रदाय ने इन्हें माया-जनित ही कहा है। उसमें केवल 'राम' को ही ब्रह्म माना गया है, राम के अवतार को नहीं। इस वातावरण में—जनता के इस अवतार विरुद्ध ब्रह्म-विवेक में—तुलसीदास को वैष्णव भक्ति के साथ अवतार को भी श्रद्धा का केन्द्र बनाना था। तत्कालीन वातावरण में अवतार के प्रति उठाए गए सन्देहों को ही तुलसीदास ने सम्वादों के प्राथमिक तर्कों के रूप में उपस्थित किया है एवं तत्कालीन संशयों को दूर करने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं :

जेहि यह कथा सुनि नहिं होई। जनि आचरज करै सुनि सोई।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी।
राम कथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं।
नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।
कलप भेद हरि चरित सोहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए।
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी।

राम अनंत-अनंत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिनके विमल विचार॥

संशयों को दूर करने के अनन्तर उन्होंने सन्त सम्प्रदाय के स्वर में ही भारद्वाज से याज्ञवल्क्य के प्रति प्रश्न कराया है :

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा।
संतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ज्ञान गुन रासी।
रामु कवन प्रभु पूछौं तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोहीं।
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा।
नारि विरह दुखु लहेउ अपारा। भयेउ रोषु रन रावन मारा।

प्रभु सोई राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वज्ञ तुम्ह, कहहु बिबेकु बिचारि॥

इसी प्रकार सती ने भी शंकर से प्रश्न किया :

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥

यही सन्देह गरुड़ को भी हुआ :

मोहि भयेउ अति मोह, प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानन्द संदोह रामु विकल कारन कवन ॥

किन्तु तुलसीदास ने इन सब सन्देहों का निराकरण करते हुए ब्रह्म 'राम' के अवतार लेने के अनेक मर्यादा-सम्पन्न एवं श्रुति-सम्मत कारण दिखलाए और राम जन्म होने पर उन्होंने उत्साह और आनन्द से कह दिया :

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार ॥

इस इच्छा शरीर का कारण भी उन्होंने दे दिया है :

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥

इस भाँति अपने युग के समस्त संशयों और तर्कों को दूर करने एवं दर्शन और धर्म को जीवन में उतारने का एकमात्र अवलम्ब तुलसीदास ने भक्ति को ही माना है। इसी भक्ति से उन्होंने ब्रह्म और अवतार में एकरूपता स्थापित की है।

तुलसीदास ने भक्ति के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को अत्यन्त व्यापक और व्यावहारिक बनाया है। उन्होंने शताब्दियों की विचारधारा को गतिशील बनाते हुए भी उसमें नवीन प्रेरणाओं की तरंगें उठाई हैं। इस भांति वे प्राचीन मान्यताओं और युग-सम्भूत व्यावहारिक प्रयोगों के बीच सुदृढ़ सेतु के समान हैं। युग की प्रवृत्तियों के भीतर उनकी दृष्टि इतनी गहरी थी कि तुलसीदास की प्रयोगपटुता आज भी मानवता के मनोविज्ञान से मेल खाती है और तुलसीदास लगभग चार सौ वर्ष बाद भी हमारे सामने एक अग्रगामी सामाजिक और धार्मिक नियामक के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

रामचरित मानस में जिस भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, वह एक ओर शास्त्रीय नवधा भक्ति है, जिसमें साधना की समष्टि है और दूसरी ओर शबरी के प्रति कही गई सहज भक्ति है, जो सुगम-साध्य आचरण-कुशलता के फलस्वरूप है।

तुलसीदास ने शास्त्रीय भक्ति (जिसे नवधा भक्ति कहा गया है) भगवान श्री राम के मुख से लक्ष्मण के प्रति अरण्यकाण्ड में कहलायी है। श्रीराम ने कहा :

जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।
सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।
श्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं।

यह भक्ति उन लोगों के लिए सुगम है जिनके सम्बन्ध में भगवान श्रीराम ने कहा है कि—

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा।
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके।

वचन करम मन मोरि गति, भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करौं सदा विश्राम॥

संसार की परिस्थितियों में काम, मद, दम्भ आदि त्याग करना अत्यन्त कठिन है। यह तो उन्हीं सन्तों के द्वारा सम्भव है जिन्होंने अपने जीवन को सदैव सत्संग में व्यतीत किया है और अभ्यासपूर्वक पवित्र जीवन की साधना की है। तुलसीदास इस सत्य से और मनुष्य स्वभाव से परिचित थे। अतः उन्होंने इस नवधा भक्ति से अलग ऐसी सहज भक्ति की भी चर्चा की है जो साधारण व्यक्तियों द्वारा भी साध्य हो सकता है। यह भक्ति उन्होंने भगवान श्री राम के मुख से शवरी के साथ वार्तालाप करते हुए कहलाई है और इस भांति उन्होंने एक नवीन नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है :

नवधा भक्ति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुन, धरु मन माहीं।
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करै कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजनु सो वेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।
सातवँ सम मोहिंमय जग देखा। मोतें संत अधिक कर लेखा।
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखै पर दोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥

सन्तों का संग, प्रभु के कथा-प्रसंग में प्रेम, गुरु-पद सेवा, प्रभु-गुण-गान, मन्त्र-जाप, सज्जन-धर्म आचरण, सन्तों को प्रभु के समान समझना, यथा लाभ सन्तोष, छलहीन जीवन, जिसमें भगवान पर विश्वास हो, यही नवधा भक्ति है जो सरलता से साधारण व्यक्ति द्वारा भी अपनाई जा सकती है। यह भक्ति शबरी के प्रति कही गई थी, इससे यह संकेत भी मिलता है कि समाज के निम्न और साधारण स्तर के व्यक्तियों द्वारा भी यह भक्ति प्रयत्न सुलभ है। तुलसीदास की भक्ति के प्रति यह दृष्टि उन्हें उन आचार्यों की संकीर्णता से मुक्त करती है जो भक्ति को वर्ग की सम्पत्ति समझते रहे। तुलसी ने जन-मनोविज्ञान की अमर सम्पत्ति अपने ग्रन्थ 'मानस' द्वारा भेंट की है।

ज्ञान-मार्ग, कर्म-योग और भक्ति-मार्ग में उन्होंने भक्ति को ही श्रेष्ठता प्रदान की है। मानस के उत्तरकाण्ड में उन्होंने यद्यपि ज्ञान और भक्ति दोनों को ही भव-सम्भव खेद को हरण करने में सक्षम समझा है तथापि ज्ञान से अधिक महत्व उन्होंने भक्ति को ही दिया है। ज्ञान-मार्ग को उन्होंने कृपाण की धार के समान तीक्ष्ण और संकीर्ण मान कर उस पर चलने की कठिनाई की ओर लक्ष्य किया है। भक्ति-मार्ग तो राज-मार्ग है जिस पर चलने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। राम को भी ज्ञानी पुत्र से अधिक भक्त-पुत्र अधिक प्रिय है। इसी कारण तुलसीदास ने अपने समस्त ग्रन्थों में अपनी साधना का रूप भक्ति के अन्तर्गत ही रखा है। विनय पत्रिका में उन्होंने लिखा है :

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलप तरु कलि कल्यान फरो॥
करम उपासन ग्यान वेद मत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यों सूझत रंग हरो॥

तुलसीदास की भक्ति-प्रतिपादन शैली में एक बात और है। अन्य सन्त भक्तों ने तो भक्ति को उपदेश और चेतावनी के रूप में प्रतिपादित किया है। तुलसीदास ने अपने जीवन के महान् सिद्धान्त भक्ति को अपने प्रिय ग्रन्थ राम-चरित मानस के पात्रों के जीवन में प्रतिफलित किया है। यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने रामचरित मानस की रचना लोक शिक्षा का उद्देश्य लेकर ही की थी अतः रामचरित मानस में प्रतिपादित भक्ति भी लोक-शिक्षा से अनुप्राणित होती हुई ज्ञात होती है। उनकी रचनाओं में प्राचीन शास्त्रों के प्रति बड़ी आस्था थी। उनका रामचरित मानस ही नाना पुराण-निगमागम-सम्मत है। अतः उन्होंने वैष्णव धर्म की नवधा भक्ति को ही लोक-शिक्षा के अन्तर्गत लाने का

प्रयत्न किया है। यह नवधा भक्ति अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं में रामचरित मानस के पात्रों की अभिव्यक्ति बन गयी है। रामचरित मानस में वर्णित अनेक पात्र नवधा भक्ति के विविध अंगों के प्रतीक बन कर चित्रित हुए हैं। विस्तार-भय से मैं मानस के तत्सम्बन्धी प्रसंगों के उद्धरण न देकर केवल भक्ति के विविध अंगों से उनकी संगति का निर्देश करूँगा। नवधा भक्ति के अंग हैं : श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। भक्ति के एक अंग के अन्तर्गत अनेक पात्र भी आ जाते हैं किन्तु मैं विशिष्ट पात्रों का ही उल्लेख करूँगा। श्रवण के प्रतीक हैं जनक, कीर्तन के प्रतीक हैं सुतीक्ष्ण, स्मरण के प्रतीक हैं शिव, पाद-सेवन के प्रतीक हैं भरत, अर्चन के प्रतीक हैं लक्ष्मण, वन्दन के प्रतीक हैं निषाद, दास्य के प्रतीक हैं हनुमान, सख्य के प्रतीक हैं विभीषण और आत्म-निवेदन की प्रतीक-स्वरूपा हैं सीता। इन विविध पात्रों की भक्ति राम के चरणों में समान रूप से है, किन्तु उनकी दृष्टि में भेद है। यही भेद महाकवि तुलसीदास ने विविध पात्रों की मनोगत रूपरेखा में रख कर हमारे समक्ष नवधा भक्ति के प्रतीकों का रूप उपस्थित किया है।

तुलसीदास की भक्ति की व्याख्या में एक नवीन मानस की रचना सम्भव है तथापि मैं इस समय इतना ही कहूँगा कि तुलसीदास ने भक्ति को जीवन के मानसिक रोगों की अमोघ औषधि मान कर उसका व्यावहारिक एवं सुगम रूप उपस्थित किया है। मानस के पात्रों में भक्ति को सहज-साध्य मान कर जहाँ उन्होंने लोक-शिक्षा का निर्वाह किया है, वहाँ उन्होंने अपने युग की संशय-ग्रस्त जनता को धर्म के सुदृढ़ पथ पर आरूढ़ करा दिया है। परम्परा और प्रयोग का इतना सुन्दर समन्वय किसी भी कवि और सन्त में नहीं है। प्राचीन, वर्तमान और भविष्य में मानव के विकास की - उसके कल्याणमय जीवन की इतनी सुन्दर, स्वस्थ संवेदना भक्ति काल की चिरन्तन प्रेरणा है।

: ३ :

तुलसी में लोकसंघर्ष

रामविलास शर्मा

'तुलसी में लोक संघर्ष'—ये शब्द सुनते ही बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि तुलसी जैसे भक्त कवि को लोकसंघर्ष से क्या काम? उनके आराध्यदेव तो राम थे, उनकी आराधना में बाधा देने वाले काम, क्रोध, मद, लोभ आदि हो सकते हैं जो हर व्यक्ति के मन में होते हैं। इनके विरुद्ध तुलसी ने संघर्ष किया और उसे हम उनका आन्तरिक संघर्ष भले ही कहें लेकिन लोकसंघर्ष से उनका क्या सम्बन्ध?

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी ने काम, क्रोध, मद, लोभ से संघर्ष किया है। उनकी कविताओं में जिस संघर्ष का वर्णन मिलता है उसका एक भाग आन्तरिक है। उसका एक दूसरा भाग भी है जिसका सम्बन्ध लोक या साधारण जनता से है। इस लोकसंघर्ष का मतलब है—साधारण जनता का संघर्ष, एक सुखी-समृद्ध जीवन के लिए उसका संघर्ष। यह संघर्ष भी गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में मिलता है। ध्यान देने की बात यह है कि गोस्वामी जी जिन नैतिक मूल्यों के लिए संघर्ष करते हैं, उनका लोकसंघर्ष से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

काम, क्रोध, मद, लोभ—इन चार शत्रुओं से सभी भक्त कवि लड़े हैं। गोस्वामी तुलसीदास जब इनसे लड़ते हैं, तब इनकी जड़ काटने के लिए नहीं बल्कि उन्हें मर्यादित करने के लिए। अपनी सीमाएँ लाँघ कर यही मनोविकार मनुष्य के पतन के कारण बन जाते हैं और सीमाओं में रह कर वे मनुष्य के विकास का साधन बनते हैं। गोस्वामी जी जिस तरह के नैतिक मूल्यों का निर्माण कर रहे थे, उनमें इनका पूर्ण त्याग नहीं था, न ही उनकी पूर्ण स्वीकृति थी। मर्यादा में बँध कर ही वे नैतिक मूल्य बनते थे।

उदाहरण के लिए 'काम' को ही लीजिए। रामचरित मानस में रावण एक ऐसा पात्र है जिसने काम की मर्यादा को अस्वीकार किया है। उसी की तरह शूर्पणखा ने भी काम की मर्यादा को तोड़ा था। गोस्वामी तुलसीदास की सहानुभूति इन पात्रों के साथ नहीं है। कवि और न्यायाधीश के रूप में वह इन्हें दण्ड देते हैं। दूसरी तरफ नारद हैं जिन्हें अपने ब्रह्मचर्य पर घमण्ड हो गया है। यह उन पात्रों में है जिन्होंने काम को पूरी तरह त्याग दिया है। यही नारद काम के फेर में ऐसे पड़ते हैं कि उनकी जगहँसाई होती है और वह कहने लगते हैं—

'जप तप कछु न होइ एहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला।'

लेकिन जब उस बाला ने नारद का रूप देखा, तो रीझने के बदले वह उनसे और खीज उठी—

'मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही।'

नारद-मोह का वर्णन करके तुलसीदास ने दिखा दिया है कि जो लोग काम को पूरी तरह त्यागने का गर्व करते हैं, वे भी समाज की मर्यादा तोड़ते हैं।

नारद से मिलते-जुलते विन्ध्याचल के वे तपस्वी हैं जो स्त्रियों के अभाव में बहुत दुखी रहते हैं और अहिल्या की कथा सुन कर प्रसन्न होते हैं कि राम के चरण-स्पर्श से बहुत सी शिलाएँ सुन्दर स्त्रियाँ बन जाएंगी और इस तरह उनका अभाव दूर हो जाएगा। इसके बारे में गोस्वामी जी ने लिखा था :

'विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि-वृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे॥

इन संसार-त्यागियों के विपरीत गोस्वामी तुलसीदास के आदर्श-पात्र सांसारिक कामों में भाग लेते हैं। वे समाज के सामने एक मर्यादा स्थिर करते हैं, वैराग्य लेने का उपदेश नहीं देते। रामचन्द्र जब पुष्पवाटिका में सीता के कंकनों और नूपुरों का शब्द सुनते हैं, तब उन्हें वह शब्द मदन की दुन्दुभी जैसा लगता है। ऐसा कवि जो मदन को अपना पूर्ण शत्रु समझता, इस तरह की पंक्तियाँ कैसे लिखता—

कंकन-किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं॥

राम ने मदन-दुन्दुभी ही नहीं सुनी, सीता को पाने के लिये उनके मन में लोभ भी पैदा हुआ—

'करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान ।
मुखसरोज मकरंद छबि, करै मधुप इव पान ॥'

यहाँ पर काम और लोभ, दोनों अपनी मर्यादा में बँधे हुए हैं और इस तरह जनता के हित के लिए वे नैतिक मूल्य बन कर सामने आते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास रावण में मद की अतिशयता दिखलाते हैं । उसमें इतना मद हो गया है कि उसे यथार्थ का ज्ञान नहीं रह गया । परशुराम को अपने बल का मद हो गया है । कई बार क्षत्रियों का नाश करने के कारण वह अपने को संसार का सबसे बड़ा योद्धा मानने लगे हैं । इनके विपरीत राम को भी अपनी वीरता पर गर्व है, लेकिन वह गर्व सीमाएँ नहीं लाँघता । राम नम्रता, लेकिन दृढ़ता से परशुराम को चेतावनी देते हैं—

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥

तुलसी के राम ऐसे नम्र नहीं हैं कि दूसरा ललकारता रहे और वह मुँह न खोलें ।

रामचरित मानस में परशुराम क्रोध के अवतार हैं । उनके क्रोध से हास्य रस की सृष्टि भी खूब होती है । गोस्वामी जी ने क्रोध की अतिशयता को हास्यास्पद दिखलाया है । लेकिन वह सभी तरह के क्रोध के विरोधी नहीं हैं । रामचरित मानस में लक्ष्मण बहुत ही लोकप्रिय पात्र हैं । नवयुवकों को उनका चरित्र विशेष रूप से प्रिय है । समुद्रपार करने के लिए जब राम ने पहले उससे विनय करने की ठानी, तब लक्ष्मण को उनका यह विचार पसन्द न आया । राम ने उनका तर्क सुन कर कहा कि करूँगा वही जो तुम कहते हो लेकिन पहले धैर्य से काम लो । गोस्वामी जी लिखते हैं—

'मंत्र न यह लछिमन मन भावा । राम बचन सुन अति दुख पावा ।
नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव-दैव आलसी पुकारा ।
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा । ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥'

अपने वचन के अनुसार राम ने समुद्र के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा लक्ष्मण चाहते थे :

'बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति ।।'

इस तरह राम ने कोप या क्रोध की मर्यादा बाँधी, उसका बहिष्कार नहीं किया।

रामचरित मानस के पात्रों द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की है, वे जनता का मनोबल दृढ़ करने वाले थे, उसे संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ाने वाले थे। कई हज़ार साल से हिन्दुस्तान के लोगों को यह मंत्र सिखाया गया था—यह संसार मिथ्या है, वैराग्य और योग से सत्य के दर्शन होते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ—मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। गोस्वामी जी ने इसके विपरीत ऐसा दृष्टिकोण रखा जिसमें सांसारिक जीवन के लिए जगह थी, जिसमें जनता के आए दिन के जीवन में काम आने वाले नैतिक मूल्यों की स्थापना थी। इस तरह गोस्वामी जी ने नैतिक धरातल पर लोकसंघर्ष का समर्थन किया।

इस बात को सभी लोग जानते हैं कि उस समय का पंडितवर्ग गोस्वामी जी की जाति-पाँति को लेकर बड़ी चर्चा करता था। इसी पर क्षुब्ध होकर उन्हें ललकारते हुए उन्होंने कहा था—

'धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ,
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम हौं राम को जा को रुचै सो कहा करो कोऊ,
मांगि के खैबो मसीत को सोइबो लेबे को एक न देबे को दोऊ।'

व्यर्थ का पाण्डित्य दिखाने वालों को ध्यान में रखकर उन्होंने रामचरित-मानस में भी लिखा था :

'द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ।।
मारग सोइ जा कहुँ जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई ।।'

कहना न होगा, ऐसे सन्तों का खण्डन करके गोस्वामी जी ने सच्चे ज्ञान के लिए मार्ग प्रशस्त किया और उन लोगों का काम आसान कर दिया जो साहित्य की रचना विश्व कल्याण के लिए करते थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं भी कहा था—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।'

हिन्दी साहित्य के कई आलोचकों ने इस बात पर ध्यान दिया है कि रामचरित मानस में जो कलिकाल का वर्णन है, वह काल्पनिक नहीं है।

'कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी, सब लोग मरै।'

यह दुकाल के विचार गोस्वामी जी के मन में उठे कैसे? अगर सारी जनता सुखी और समृद्ध थी तो गोस्वामी जी कलिकाल में, यानी अपने जमाने में अकाल और भुखमरी का वर्णन क्यों कर रहे थे? काकभुशण्डि अयोध्या छोड़ कर परदेस जाने की बात वैसे ही करते हैं, जैसे कभी-कभी किसानों को हम आज भी करते सुनते हैं:

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपत्ति बस, तब मैं गयेउँ बिदेस॥

कलिकाल और काकभुशण्डि के प्रतीकों के अलावा भी कवितावली और विनयपत्रिका में गोस्वामी जी जब अपने कष्टों का वर्णन करते हैं, तब भी उस समय की लोकदशा का पता चलता है। कुछ कवित्तों में उन्होंने अपनी बात न कह कर सीधे-सीधे लोक की बात कही है। देश दशा का ऐसा मर्मस्पर्शी वर्णन उस समय के किसी और कवि का नहीं मिलता।

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीधमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।
बेद हूँ पुरान कही लोकहू बिलोकियत,
साकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु,
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।'

इस छन्द में गोस्वामी जी ने दरिद्रता को रावण कहा है और दिखलाया है कि यह रावण सिर्फ उन्हें या किसी एक व्यक्ति को नहीं सताता वरन् सारी दुनिया को दबाए हुए है। इस दशा के लिए शासक वर्ग की जितनी जिम्मेदारी है, गोस्वामी जी उसे खुले शब्दों में कहते हैं। कलिकाल के वर्णन में वर्तमान और भविष्य को देखने वाले कवि की तरह वह कहते हैं—

'नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड विडंव प्रजा नितहीं।'

प्रजा पालने का धर्म तो राजा भूल गए हैं। वह डरा धमका कर प्रजा को बस में रखते हैं। लेकिन गोस्वामी जी इनके डराने धमकाने से डरने वाले नहीं। वह भविष्यवाणी करते हैं कि प्रजा को सताने वाले इन तमाम रावणों का नाश होगा—

राज करत विनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं बारह बाट॥

इनके बदले वह ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें दरिद्रता न हो, विषमता न हो, मोक्ष और स्वर्ग पर किसी का इजारा न हो—

'राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परमगति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब संदर सब विरुज सरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।

और इस समता की व्यवस्था विज्ञान से रची जाती है—

'बिनु विज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै।'

इस तरह न्याय और समता की व्यवस्था का आदर्श सामने रखकर गोस्वामी जी ने लोकसंघर्ष को प्रेरणा दी। उन्होंने जनता से कहा कि दरिद्रता के रावण का नाश होगा और उसके बदले पर सुख और समृद्धि की व्यवस्था तुम्हें इसी संसार मिलेगी।

: ४ :

तुलसी और नारी

नगेन्द्र

तुलसी का यह सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों ही रहे हैं कि भारतीय परम्परा ने उन्हें लोकनायक महात्मा पहले और कवि बाद में माना है। इस दृष्टि से उनके ग्रन्थ हमारे लिए आचार शास्त्र का काम भी करते रहे हैं। तुलसी के प्रकाण्ड आलोचक शुक्ल जी ने भी उनके इसी रूप पर ही अधिक बल दिया है। परिणामतः आज तुलसी के साहित्यिक महत्व के मूल्यांकन में भी अनेक नैतिक-सामाजिक प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य हो जाता है। जब तुलसीदास के समर्थकों और भक्तों ने उनके काव्य पर सामाजिक आचार-शास्त्र का आरोप लगाया तो स्वभावतः ही आधुनिक नारी की उद्‌बुद्ध चेतना ने सहृदयता के न्यायालय में अपने प्रति न्याय की माँग की।

तुलसीदास के रामचरित मानस तथा अन्य ग्रन्थों में, विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं जो किसी भी देश-काल की नारी के प्रति, किसी रूप में भी न्याय नहीं करतीं। उन्होंने नारी की प्रकृति, उसके चारित्र्य, बुद्धि-विवेक, आचार-व्यवहार सभी की निन्दा की है। पहले प्रकृति को लीजिए :

स्वयं भगवान शंकर के श्री मुख से जगदम्बा सती के ब्याज से नारी की प्रकृति का वर्णन सुनिए :

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ।
संसय अस न धरिय उर काऊ॥

इसके आगे कवि की टिप्पणी है :

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ।
देखहु नारि सुभाव-प्रभाऊ॥

भरत रामचरित मानस के सर्वश्रेष्ठ पात्र हैं। वे तुलसी के मत से मानव रूप के आदर्श हैं। नारी की प्रकृति के विषय में उनकी धारणा भी सर्वथा प्रतिकूल है :

विधिहु न नारि हृदय-गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

उधर रावण, भरत के सर्वथा विपरीत, तुलसीदास की धारणा के अनुसार अमानव-रूप का प्रतीक है। परन्तु नारी की प्रकृति के विषय में तुलसी के आदर्श मानव और अमानव दोनों का एक ही मत है। रावण के शब्दों में :

नारि-सुभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥

इस प्रकार तुलसीदास के दो सर्वथा प्रतीक पात्र नारी के विषय में एकमत हैं। और यह धारणा केवल पुरुषों की ही नहीं है, नारी स्वयं भी अपने विषय

।

राम से शबरी कहती है :

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मति मन्द गँवारी॥

उधर भगवती अनसूया भी नारी को सहज अपावन ही मानती हैं : 'सहज अपावन नारि।'

ये तो हुए व्यक्तियों के विचार। समष्टि का निर्णय भी नारी की प्रकृति को दुष्ट ही ठहराता है। अयोध्या का जनमत है :

सत्य कहहिं कवि नारि-सुभाऊ।
सब विधि अगहु अगाध दुराऊ॥

और अन्त में निष्कर्ष रूप में स्वयं तुलसीदास की घोषणा है कि नारी स्वतंत्र होकर मार्ग भ्रष्ट हो जाती है : जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी।

प्रकृति के अतिरिक्त नारी की बुद्धि और विवेक के विषय में भी तुलसीदास का मत भिन्न नहीं है। सती के शब्दों में स्वयं नारी अपनी बुद्धि के विषय में कहती है :

सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ ॥

अपनी सहज अज्ञता के कारण वह तत्व-दर्शन आदि की अधिकारिणी नहीं है : 'जदपि जोषिता अन अधिकारी।' इसी प्रकार उसके आचार-व्यवहार को भी तुलसीदास ने मलीन ही माना है :

कहँ हम लोक-वेद-विधि-हीनी।
लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥

उनकी दृष्टि में नारी का सामाजिक गौरव कितना है, इसका संकेत भी आपको मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम के शब्दों में मिल जाएगा। लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर शोक-विह्वल राम इस दुर्घटना का समस्त दोष नारी के ही मत्थे मढ़ देते हैं :

जैहउँ अवध कवन मुँह लाई,
नारि-हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बर अपजस सहतेउँ जग माहीं,
नारि-हानि विशेष छति नाहीं।

यहाँ राम शोक में व्याकुल होकर न केवल क्षत्रिय की वरन् साधारण पुरुष की आत्म-मर्यादा का भी त्याग कर देते हैं। स्त्री का हरण पुरुष के पौरुष के लिए सबसे बड़ी चुनौती है, परन्तु यहाँ ऐसा प्रतीत होता है मानों नारी के प्रति पतनकालीन हिन्दू समाज की हीन भावना राम पर भी हावी हो जाती है।

तुलसीदास का सबसे भयंकर प्रहार नारी के कामिनी रूप पर हुआ है। उन्होंने रामादि आदर्श पात्रों द्वारा परोक्ष रूप से और उधर स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अनेक स्थानों पर नारी के इस भयंकर खतरे की चेतावनी दी है। पंपासर के किनारे नारद मुनि को सावधान करते हुए भगवान राम कहते हैं :

सुनु मुनि कह पुरान स्रुति सन्ता।
मोह विपिन कंह नारि बसन्ता ॥
जप तप नेम जलासय झारी।
होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी ॥
पाप उलूक-निकर सुखकारी।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

नारी मोह रूपी विपिन के लिए वसन्त समान है, जप-तप नियमादि अर्थात् जलाशयों को वह ग्रीष्म ऋतु के सदृश सुखा देती है। पाप-रूपी उलूकों के लिए वह निबिड़ रात्रि के सदृश सुखदायी है, और बुद्धि, बलशील तथा सत्य-रूपी मीनों के लिए वंशी के समान है।

उसमें संयम का इतना घोर अभाव है कि भ्राता, पिता और पुत्र किसी भी सुन्दर पुरुष को देखकर वह रसार्द्र हो जाती है :

भ्राता, पिता, पुत्र उरगारी,
पुरुष मनोहर, निरखत नारी,
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी,
जिमि रविमनि द्रव रबिहिं बिलोकी।

इसीलिए तुलसीदास अपने मन को बार-बार सचेत करते हैं :

दीपसिखा सम जुवति तन, मन जनि होइ पतंग।
भजहु राम, तजि काम मद, करहु सदा सतसंग॥

क्योंकि पुरुष के लिए स्त्री घोर शत्रु से भी अधिक दारुण है—उसकी भयंकरता मृत्यु से कुछ ही कम समझिये। इसका प्रमाण है जन्म-कुण्डली जिसमें नारी का स्थान दारुण वैरी और मृत्यु के बीच पड़ता है :

जनम पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि।
दारुण बैरी मीचु के, बीच बिराजति नारि॥

तुलसी बाबा अपनी सफाई में क्या कहते, यह कहना तो आज सम्भव नहीं, परन्तु उनके भक्तों और प्रशंसकों ने उनकी ओर से अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं जिनका सारांश इस प्रकार है :

तुलसी का काव्य व्यक्ति-परक काव्य न होकर वस्तु-परक काव्य है। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति न करके कथा का वर्णन किया है जिसमें प्रसंग और पात्र के अनुसार अनेक प्रकार के भाव और विचार व्यक्त किए गए हैं। अतएव सभी उक्तियों का तुलसीदास पर ही आरोप कर देना न्याय संगत नहीं है। रामचरित मानस में भिन्न प्रकृति के भिन्न-भिन्न पात्र हैं जो अपनी परिस्थिति और मनोदशा के अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं : उदाहरण के लिए भरत अथवा राम की वाणी शोक और आत्मग्लानि की कातर वाणी है, और शबरी तथा ग्राम-नारियों के शब्द उनकी अतिशय कृतज्ञता और विनम्रता को ही व्यक्त करते हैं। उधर, 'भ्राता पिता पुत्र उरगारी'

आदि का सम्बन्ध शूर्पणखा से है और सती की आत्म-ग्लानि—'नारि सहज जड़ अज्ञ' का सम्बन्ध भी उनके अपने अज्ञान-जन्य अपराध से ही है। इसी प्रकार रावण स्वयं दुष्ट पात्र है, अतएव उसके शब्द तुलसीदास के शब्द कैसे हो सकते हैं। तुलसीदास के ये अधिवक्ता कथाकार कवि के अवैयक्तिक रूप का तर्क उपस्थित करते हैं।

परन्तु यह तर्क अधिक संगत नहीं है। पहले तो तुलसी जैसे भक्त कवि की कविता को एकान्त वस्तु-परक मानना ही असंगत है। स्वयं उन्होंने ही अपनी काव्य-रचना को स्वान्तःसुखाय कहा है, और यह अर्थवाद नहीं क्योंकि वास्तव में भक्त कवि की चेतना मूलतः वस्तु-परक हो ही कैसे सकती है? वस्तु-परक दृष्टि की पहली शर्त है—वस्तु अर्थात् पार्थिव जगत की सत्ता में अचल विश्वास और भक्त के लिए भाव-जगत ही सब कुछ है। इस प्रसंग में जो लोग शेक्स-पियर का उदाहरण देकर तुलसी का पक्ष-समर्थन करते हैं वे लाल और सफेद रंगों में भेद करना नहीं जानते। इसके अतिरिक्त तुलसी की पूर्वोक्त पंक्तियों की परीक्षा करने पर भी इस युक्ति का सहज ही प्रतिवाद हो जाता है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियां ही लीजिए :

भ्राता, पिता, पुत्र, उरगारी
पुरुष मनोहर, निरखत नारी,
होइ बिकल मन सकहि न रोकी,
जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।

जहाँ तक कटुता का सम्बन्ध है, मेरी धारणा है कि नारी के प्रति इससे अधिक अन्याय नहीं किया जा सकता। कहाँ नारी का पवित्रतम वात्सल्य भाव, कहाँ 'द्रव' शब्द की वीभत्सता। कहा जा सकता है कि यह निन्दा दुष्टा शूर्पणखा की है, साधारण नारी की नहीं। परन्तु ऐसा नहीं है। ये पंक्तियाँ शूर्पणखा के प्रसंग में अवश्य कही गई हैं, किन्तु उसके लिए नहीं कही गईं। यह नारी-व्यक्ति की भर्त्सना नहीं, नारी जाति की भर्त्सना है। और ये एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र को उद्दिष्ट कर नहीं कही गईं, ये तो काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़ से कही गई हैं—दूसरे शब्दों में स्वयं कवि की ही सामान्य टिप्पणी है। इसी प्रकार अनेक उक्तियों में तो पात्र बीच में आते ही नहीं, वे प्रत्यक्ष कवि-बचन हैं; यथा—

जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी।

दूसरा तर्क तुलसीदास के पक्ष में यह दिया जाता है कि उन्होंने सभी स्त्रियों की निन्दा नहीं की; जिनको निन्द्य समझा है, उन्हीं की निन्दा की है।

सीता, कौशल्या, सुमित्रा, अनसूया यहाँ तक कि मन्दोदरी के प्रति भी उन्होंने असीम श्रद्धा व्यक्त की है और उनके उज्ज्वल चित्र अंकित किये हैं। परन्तु इसके उत्तर में तीन प्रतिउक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं : एक तो यह कि सीता, कौशल्यादि की महिमा का वर्णन तुलसी ने केवल राम के नाते से ही किया है—

नाते सबहिं राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।

इन पात्रों की महिमा मूलतः राम की ही महिमा है। मन्दोदरी की महिमा इसलिये है कि वह राम के लिए अपने पति से भी लड़ बैठती है। यदि राम बीच में न होता तो न जाने तुलसीदास उसके विषय में क्या कहते ? दूसरी बात यह है कि इन पात्रों के व्यक्तित्व भी अपने आप में कोई विशेष प्रबल नहीं हैं। राम को हटा कर यदि आप सीता के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विश्लेषण करें तो उसमें वाञ्छित शक्ति और दृढ़ता का अभाव पायेंगे। परम पुरुष की आदि शक्ति सीता के व्यक्तित्व में जो शक्ति और प्रखरता होनी चाहिए वह तुलसी की सीता में नहीं है। वे राम की छाया मात्र है। तुलसी ने वास्तव में मध्यकालीन हिन्दू परम्परा के अनुसार सीता का गुड़ियानुमा वधू-चित्र ही अंकित किया है।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
सो बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डराती॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये॥
हंसगवनि तुम नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहिं देइहिं लोगू॥

केवल रावण के सामने ही एक-दो अवसरों पर उनकी परम शक्ति उद्बुद्ध होती है। पर वहाँ भी उनको अपने बल की अपेक्षा राम के बल का ही अधिक भरोसा है :

खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।

तीसरी प्रतियुक्ति यह दी जा सकती है कि मान लीजिए तुलसी ने सीता, कौशल्यादि का महिमा-गान किया भी है, फिर भी तो यह व्यक्तियों का ही महिमा-गान हुआ, नारी जाति की तो उन्होंने सदा निन्दा ही की है। व्यष्टि को ही अच्छा बुरा कहना तो प्रसंग, पात्र, मनोदशा आदि पर निर्भर हो सकता है, परन्तु समष्टि को बुरा कहना तो कवि की सामान्य धारणा को ही व्यक्त करता है।

तुलसीदास के समर्थक एक तर्क यह देते हैं कि कवि पर देश-काल का प्रभाव था। उस युग में स्त्रियों की दशा अत्यन्त हीन थी, वे वास्तव में ही अज्ञ, मतिमन्द तथा लोक-वेद-विधि-हीन थीं। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन दृष्टिकोण भी नारी को केवल जीवन का उपकरण अथवा दास ही मानता था, अतएव तुलसीदास ने अपने युग की स्थिति तथा विचारधारा के अनुरूप ही नारी का चित्रण किया है। यह तर्क साधारण कवि के लिए तो ठीक हो सकता है, तुलसी जैसे क्रांतिद्रष्टा कवि के लिए नहीं। और फिर, सूर ने ऐसा क्यों नहीं किया ?

तुलसी के पक्ष में चौथा तर्क और भी प्रबल है। तुलसीदास सन्त थे, और उन्होंने अपने ग्रन्थों में जहाँ अनेक बातें साधारण गृहस्थों के लिए कही हैं, वहाँ कुछ बातें सन्तों के लिए भी कही हैं। नारी-निन्दा उन्होंने अपने और अपने समानधर्मी सन्तों के मन को सचेत करने के लिए की है। शुक्ल जी कहते हैं कि यदि पुरुष-कवि तुलसीदास ने नारी को पुरुष पतंगों के लिए दीप-शिखा कहा, तो स्त्री-कवि पुरुष को नारी-पतंगियों के लिए भाड़ कह सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी के दृष्टिकोण के पीछे इस प्रकार का मनोविज्ञान रहा होगा—सन्त होने के कारण उनका कन्चन और कामिनी के प्रति सतर्क रहना स्वाभाविक ही था, और तत्कालीन सन्त-समाज को भी सम्भवतः सचेत करने की आवश्यकता रही हो। परन्तु फिर भी इसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। सन्त का दृष्टिकोण "सीय राममय" भी तो हो सकता था, और स्वयं तुलसी ने अपने महाकाव्य का आरम्भ इसी परप्रत्यक्ष-गम्य नमस्क्रिया से किया भी है। परन्तु इसका निर्वाह नहीं हो सका क्योंकि एक तो उनके अपने संस्कार इसमें बाधक हुए हैं, दूसरे भारतीय सन्त-परम्परा की दृष्टि भी तो नारी के प्रति अत्यन्त सन्देहशील और कठोर रही है। वास्तव में तुलसी की कई कटूक्तियाँ उनकी अपनी न होकर संस्कृत नीति-वचनों का सीधा अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए उनकी यह चिरनिन्दित अर्धाली :

ढोल, गँवार, शुद्र, पशु, नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

गर्ग-संहिता के श्लोक का अक्षरशः अनुवाद है—

दुर्जनाः शिल्पिनो दासाः दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियाः
ताड़िता मार्दवं यान्ति नैते सत्कारभाजिनः।

इसी प्रकार रावण की कटूक्ति भी अनुवाद ही है—

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं,
अवगुन आठ सदा उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया,
भय अविवेक असौच अदाया ॥

इसका मूल श्लोक इस प्रकार है—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

उस समय का वातावरण ही कुछ ऐसा था : संस्कृत के मध्यकालीन नीति-ग्रन्थ, स्मृतियाँ, पुराण, सन्तवाणी—यहाँ तक की संस्कृत और हिन्दी के घोरतम श्रृंगारी कवियों ने भी इस परम्परा का विचार अथवा अविचारपूर्वक पालन किया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से वास्तव में इसे नारी की भर्त्सना न मानकर इनके अपने अतिशय अनुरक्त मन की ही आत्म-भर्त्सना समझना चाहिये।

मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण-शास्त्र इस मनोवृत्ति के कुछ और भी कारण उपस्थित कर सकता है। इस कटुता का एक अत्यन्त स्पष्ट कारण तो तुलसी के जीवन की उस घटना में ही ढूंढा जा सकता है जिसने उन्हें राम-भक्ति की ओर प्रेरित किया था। यह घटना तुलसीदास के व्यक्तित्व-निर्माण का मूल आधार है। इसी के द्वारा उनका उत्कट पार्थिव प्रेम उतने ही उत्कट अपार्थिव प्रेम में उन्नमित हो गया था। अपने भाव का उन्नयन तो तुलसी ने साधना से कर लिया, परन्तु चूंकि यह परिवर्तन सहज एवं क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा न होकर एक झटके के साथ हुआ था, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थि उनके मन में रह गई और उनकी आत्म-ग्लानि जीवन भर न तो अपने आतुर मन को क्षमा कर सकी और न उस आतुर मन की आलम्बन अथवा वाह्य प्रतीक नारी को ही। सामान्यतः तो जीवन के उस अयुक्त रस को उन्होंने अपने लिए और दूसरों के लिए भी अमृत बना लिया, परन्तु परिवर्तन की अचानकता के कारण कदाचित कुछ कण ऐसे रह गए जो विष बन गए। उनकी उक्तियों के विश्लेषण से इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि वे नारी को कभी क्षमा नहीं कर सके—परन्तु यहाँ नारी को एक सामाजिक इकाई न मानकर तुलसी के उस अधीर मन का ही प्रतीक मानना चाहिए जो उनकी घोर ग्लानि और लज्जा का कारण बना था।

एक दूसरा कारण और भी है। तुलसी की भक्ति पुरुष-भाव से पुरुष की अर्थात् पुरुष-रूप भगवान की उपासना है। दास्य भाव भी पुरुष-भाव ही है। मध्ययुग में उपासना के तीन मार्ग थे: नारी-भाव से पुरुष-रूप भगवान की उपासना, पुरुष-भाव से नारी अर्थात् शक्ति-रूप भगवान की उपासना और पुरुष भाव से पुरुष-रूप भगवान की उपासना जिसके अन्तर्गत सख्य और दास्य दोनों भाव आ जाते हैं। पहली दो पद्धतियों में तो नारी भाव की अनिवार्यता ही है, इस तीसरी उपासना-पद्धति में नारी नहीं आती और आती है तो बाधा-रूप में आती है या अवचेतन में अनावश्यक प्रतिद्वन्द्व की भावना उत्पन्न करती है।

ये सब तर्क और यह कार्य-कारण शृंखला केवल व्याख्या मात्र हैं। ये तुलसी के नारी-विषयक दृष्टिकोण के लिए क्षमा-याचना या अधिक से अधिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। वास्तव में आज की नारी यदि समस्त जगत को "सीयराममय" समझने वाले समद्रष्टा कवि से अधिक न्याय की माँग करे तो आप उसके क्षोभ को सहज ही समझ सकते हैं।

: ५ :

तुलसी के दार्शनिक विचार और समन्वयवाद

शिवदानसिंह चौहान

तुलसी एक ऐसे महान स्रष्टा और जीवन-द्रष्टा कवि हैं, जिन्होंने मध्य-युगीन भारत की सम्पूर्ण चेतना को मार्मिक काव्य की वाणी में अभिव्यक्ति दी। डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्व-ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय,—रामचरितमानस शुरू से आखीर तक समन्वय का काव्य है।'' इसके अतिरिक्त तुलसी के सम्बन्ध में प्रायः सभी विद्वानों ने एक मत से यह स्वीकार किया है कि गौतम बुद्ध के बाद तुलसीदास ही भारत में सबसे बड़े लोकनायक हुए हैं। इन कथनों से यह सिद्ध है कि तुलसीदास दार्शनिक तो थे ही पर उनका ज्ञान और प्रतिभा भी इतनी महान् थी कि वह अपने समय में प्रचलित सभी दार्शनिक धाराओं का समन्वय कर सके। इसलिए उनके दार्शनिक विचारों और उनकी समन्वय-कारी महत्ता को समझने के लिए मध्ययुगीन समाज में प्रचलित उन समस्त परस्पर-विरोधी विचार पद्धति और साधना प्रणालियों की पृष्ठभूमि से परिचित होना जरूरी है जिनका उन्होंने समन्वय किया। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। मध्युगीन भारतीय विचार-परम्परा तात्विक दृष्टि से मूलतः आदर्शवादी थी, यद्यपि मतमतान्तर अनेक थे और उनका परस्पर-विरोध कभी-कभी उग्ररूप धारण करके सामाजिक वैषम्य को और भी तीव्र कर देता था। अतः तुलसीदास ने यदि समन्वय किया, तो यह समन्वय तात्विक दृष्टि से

मूलतः आदर्शवादी ही था, वैज्ञानिक नहीं, क्योंकि वैज्ञानिक तत्वदर्शन की प्रणाली उस समय की भारतीय चिन्तनधारा का अंग न बन पाई थी। उस समय विद्रोह और प्रगति की धाराएं भी धार्मिक आन्दोलनों और भक्ति-भावना के माध्यम से ही व्यक्त होती थीं जिस प्रकार रूढ़ि-जर्जर ह्रासोन्मुखी विचार-धाराएं धर्म का आश्रय लेती थीं।

तुलसी से पूर्ववर्ती दार्शनिक-विचार-परम्परा और उपासना पन्थों एवं सम्प्रदायों के परस्पर विरोध के मूल कारण मात्र सैद्धान्तिक नहीं, बल्कि सामाजिक वास्तविकता की परस्पर-विरोधी परिस्थितियों में छिपे थे। तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों — वैष्णव, शाक्त, शैव आदि की मूल दार्शनिक प्रेरणा की प्रचीन परम्परा में भी सामाजिक परिस्थितियों के परस्पर-विरोध ही कारण के रूप में विद्यमान थे। वैदिक धर्म, जिसे यज्ञ-दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है, आर्यों की जातीय प्रभुता का प्रतीक था और जिसके विरोध में आर्येतर विचार-धाराओं को जन्म मिला। यही नहीं वैदिक हिंसा के विरोध का मूल कारण जातिदम्भ के प्रति विजातियों का असन्तोष भी था। बौद्ध दर्शन का उदय आर्यों के मध्य ही जाति दम्भ और वैदिकहिंसा के विरोध में हुआ। जाति दम्भ के सबसे बड़े रक्षक ब्राह्मण लोग पुरोहित के रूप में और क्षत्रिय यजमान के रूप में बने रहे। ब्राह्मणों को बौद्धों का यह दार्शनिक विद्रोह असह्य था क्योंकि वर्णाश्रम व्यवस्था को इससे चोट पहुँची थी। इसलिए बौद्धों के विरोध में शांकर-दर्शन की प्रतिष्ठा में ब्राह्मणों ने सर्वाधिक योग दिया और यज्ञ-दर्शन के स्थान पर उन्होंने उपनिषद् के विभिन्न चिन्तनों तथा पुराणों की कथाओं का आश्रय लिया। श्रुति-स्मृति की शास्त्रीय मान्यता को वे फिर भी सर्वोपरि मानते थे। श्रुति-स्मृति-विरोधी धर्मों का उदय भी उन्हीं वर्गों द्वारा हुआ जिन्हें श्रुति-स्मृति के नियमों में स्थान प्राप्त नहीं था। ऐसे लोगों ने वेदानुकूल और वेद-विरोधी दोनों ही रूपों में अपने अलग शास्त्रों की रचना की जैसे शाक्त-सम्प्रदाय के तन्त्र ग्रन्थ। इस सम्प्रदाय के अनुसार शक्ति के रूप में प्रकृति, स्त्री या देवी की उपासना प्रमुख थी और इसमें भी दक्षिणपक्षी और वामपक्षी भेद हो गये। इन वामपक्षियों ने मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारों की उपासना शुरू की। गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसे शाक्तों का विरोध किया। उन्होंने लिखा :

'तजि स्रुति पंथ वामपथ चलहीं।
बंचक बिरचि वेष जग छलहीं॥'

इस विरोध का कारण उनकी अनैतिक उपासना का नैतिक-सामाजिक विरोध है, साथ ही शाक्तों की वेद विरोधी प्रवृत्ति को भी तुलसी ठीक नहीं समझते थे क्योंकि वह स्वयं वैष्णव भक्त होते हुए श्रुति-स्मृति की मान्यता में पूरे ब्राह्मणवादी थे।

इसी प्रकार शंकर-दर्शन से मूल प्रेरणा लेकर उसके विरोध में दक्षिण में वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों का जन्म हुआ। दक्षिण के अडयार और अलवारों में इस भक्ति आन्दोलन का स्रोत फूटा जो दूसरे शैवादि मतों में भी रूप बदल कर प्रवेश कर गया।

दक्षिण के इस भक्ति-प्रवाह को समाज के असन्तुष्ट वर्ग की शक्ति प्राप्त थी। जाति दम्भ के विरुद्ध अस्पृश्यों की असन्तोष भावना ने ही भक्ति की यह अन्तःसलिला प्रवाहित की। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि दक्षिण में रामानुजाचार्य ने भक्ति के माध्यम से नीच जातियों को ऊँचा स्थान दिया। यह वैष्णव भक्ति प्रवाह शंकर के मायावाद की दार्शनिक प्रतिक्रिया का परिणाम था क्योंकि भक्ति में जीव-ब्रह्म की एकता को स्थान नहीं हो सकता, उसमें उपास्य और उपासक, भक्त और भगवान की आवश्यकता होती है। भागवत महापुराण से भक्ति की इस प्रतिक्रिया को पौराणिक समर्थन प्राप्त हुआ। चारों वैष्णव सम्प्रदायों ने अद्वैतवाद का विरोध किया। इन सबके दर्शनों में विरोध होते हुए भी इस बात में सब एकमत हैं कि उपास्य और उपासक, भक्त और भगवान दो हैं। रामानुजाचार्य के श्री-सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा में तुलसी को स्थान देने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है क्योंकि रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में से एक श्री रामानन्द की रामोपासना की सारी भक्ति-पद्धति का पालन तुलसी ने किया है। दूसरे निर्गुणपन्थी कबीर आदि सन्त रामानन्द के शिष्य थे किन्तु वे योग और नाथ सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों से प्रभावित थे। साथ ही रैदास, कबीर, पीपा, धन्ना आदि नीच जाति के सन्तों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध भी किया। किन्तु तुलसी इस वैष्णव सम्प्रदाय की रामोपासना को मानते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्के समर्थक थे।

तुलसी ने अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का निदान वर्ण-व्यवस्था के प्रतिपादन के साथ-साथ उदार-भक्ति-परम्परा के निरूपण में उचित समझा। तुलसी ने जात-पाँत विरोधी कबीर की अलखोपासना को अनुचित समझा और कहा :

'हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि, राम नाम जपु नीच ॥'

तुलसी ने ज्ञानाश्रयी योगमार्गी नाथ पन्थ को भी अपनी सगुणोपासना के अनुकूल नहीं समझा। साथ ही उन्होंने उसे लोकसंग्रह और सामाजिक सदाचार की अपनी शास्त्रीय मान्यता के बिपरीत पाया। इसीलिए उन्होंने लिखा :

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।
निगम नियोग ते, सो कलि ही धरो सो है ॥'

(कवितावली)

तुलसीदास ने निर्गुणोपासकों को उत्तर देते हुए भक्ति की महत्ता का इस प्रकार प्रतिपादन किया है। उन्होंने घोषित किया कि भक्ति के बल से निर्गुण भी सगुण हो जाता है :

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं श्रुति पुरान बुध वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगति प्रेम-बस सगुन सो होई ॥

इस प्रकार अलख और निर्गुण को भी भक्ति के बल से साकार करने की बात कह कर तुलसी ने उस लोक भावना को सार्थकता प्रदान की जो ज्ञानमार्गियों के रहस्यमय अलख के रूप को न समझ कर अपने को अज्ञानी समझने लगी थी। भक्ति की इस लोकरंजनकारी प्रेरणा ने उन्हें जीवन और जगत में आस्थावान बनाया।

तुलसीदास के दार्शनिक समन्वय को देखते हुए यह नहीं भूल जाना चाहिए कि तुलसी लोकमर्यादा, वर्ण व्यवस्था, सदाचार व्यवस्था और श्रुति-सम्मत होने का ध्यान सदा रखते हैं। चाहे वे राम की भक्ति का प्रतिपादन करें, चाहे अद्वैतवाद का, चाहे माया का निरूपण करें या जीवन का विवेचन, चाहे शिव की वन्दना करें या राम की, किन्तु वह अपनी इन बातों को किसी न किसी रूप में याद रखते हैं। इसीलिए 'हरि को भजै सो हरि का होई' और 'सिया राम--मय सब जग जानी' की समता पर आधारित भक्ति का वर्णन करते हुए भी शूद्र और ब्राह्मणों के भेद को स्वीकार करते हैं। साथ ही तुलसी माया और ईश्वर जैसे दार्शनिक आदर्शवादी विचारों का विवेचन करते हुए भी 'श्रुति-सम्मति' का सदा ध्यान रखते हैं :

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ।
वेद पुरान सन्त-मत भाखउँ ॥

तुलसी ने माया और ब्रह्म पर विचार करते हुए कुछ बातों को अद्वैत-वादियों की भाषा में कहा है किन्तु वह अद्वैतवादियों की तरह 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' में विश्वास नहीं करते। उन्होंने माया के विद्या और अविद्या रूपी दो भेद माने। अविद्या-माया का मूल वह अहंकार को मानते हैं :

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥

किन्तु साथ ही वह कहते हैं कि भक्त को अविद्या-माया नहीं सताती और विद्या-माया उसे ईश्वर के समीप पहुँचाती है :

'हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या।
प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ॥'

इसीलिए उन्होंने राम को ईश्वर और सीता को माया माना है। यहाँ उनका माया से अर्थ विद्या-माया से ही हो सकता है :

'स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।'

इस प्रकार अद्वैतवादियों की तरह माया को अविद्या या अज्ञान का कारण मानते हुए भी तुलसी ने माया को सीता का प्रतीक मान कर उसे केवल भ्रम नहीं माना।

तुलसी ने ब्रह्म या ईश्वर सम्बन्धी विचार भी अद्वैतवादियों की भाषा में व्यक्त किया है : व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनन्द रासी।' किन्तु तुलसी ने राम में ही ईश्वर की स्थापना की और उन्हें पुराण के अनुसार स्वयं रूपावतार की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया। इसीलिए उन्होंने 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' को ब्रह्म (ईश्वर) प्राप्ति का एक मात्र साधन नहीं माना। उन्होंने ज्ञान और मुक्ति का समन्वय किया, किन्तु मुक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ माना :

'ग्यान को पंथ कृपाण कै धारा,
परत खगेस होइ नहिं बारा।'

किन्तु भक्ति के बल से यह मुक्ति अपने आप समीप आ जाती है :

'राम भजन सोइ मुक्ति गुसाईं।
अन-इच्छित आवै बरिआई ॥'

जीव के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए तुलसी ने लिखा :

'छिति, जल, पावक, गगन, समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा ॥'

जीव का धर्म और गुण इस प्रकार है :

'भूमि परत भा डाबर पानी ।
जनु जीवहि माया लपटानी ॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना ।
जीव धरम अहमित अभिमाना ॥'

किन्तु वह ब्रह्म और जीव में सहज स्नेह मानते हैं। वह मानते हैं : 'ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।' किन्तु जीव और ब्रह्म की एकता को उन्होंने इस रूप में नहीं स्वीकार किया है कि जीव का उपासक-रूप ही कुछ न रहे।

'सांख्य' वाले जगत को सत्य मानते हैं, कुछ नैयायिक जगत को सत्य और कुछ असत्य मानते हैं और अद्वैतवादी जगत को मिथ्या बताते हैं। तुलसी ने मिथ्यावादियों से पूछा, 'जौं जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होत कहहु केहि लेखे।' अर्थात् यदि जगत मिथ्या है तो कष्टों का अनुभव हमें कैसे होता है।

तुलसीदास सब मतावलम्बियों से कहते हैं :

'कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ,
जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरइ तीनि भ्रम,
सो आपुन पहिचानै।'

अर्थात् जगत को सत्यासत्य, सत्य और मिथ्या मानने वालों के भ्रम से ऊपर उठकर सोचने से ही अपनेपन की सही पहिचान होती है क्योंकि राममय जग की पहिचान होने पर ही तुलसी ने लिखा था :

'सियाराम मय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'

इसी प्रकार तुलसी ने अपने समय के प्रचलित विभिन्न देवताओं की वन्दना पौराणिक प्रतीकों के रूप में की है। राम से शिव की पूजा कराई है और शिव से राम को श्रेष्ठ भी बताया है। उन्होंने लोक-प्रचलित मंगलकारी ईश्वर के सभी रूपों की वन्दना की।

इन तमाम दार्शनिक विचारों और उपासना रूपों तथा देवी-देवताओं के कुछ न कुछ वर्णन तुलसी-साहित्य में होने से कोई उन्हें अद्वैतवादी, कोई विशिष्टाद्वैतवादी, कोई केवल दास्यभाव का भक्त, कोई केवल वैष्णव, तो कोई स्मार्त वैष्णव मानते हैं, किन्तु तुलसी इनमें से सब को साथ लेकर इन सबसे अलग थे। वह 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' की बात कहते हुए भी लोकधर्म की उपेक्षा नहीं करते थे। उनका दार्शनिक समन्वयवाद, सामाजिक मर्यादाओं को वर्ण और वेद के अनुसार प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न था जिस पर सामन्ती संस्कारों की छाप थी, किन्तु लोककल्याण में उनकी आस्था उनके उदार मानववाद का परिचायक है, जिसकी व्यापक प्रेरणा से वह इतनी विभिन्नताओं का विराट समन्वय करके युग को अपने अनुकूल बनाने की महान कला-साधना सम्पन्न कर सके।

: ६ :

तुलसी का काव्य-कौशल

विजयेन्द्र स्नातक

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी काव्य गगन के सबसे अधिक दीप्तिमान नक्षत्र हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा और पाण्डित्य का प्रभाव देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर आज सार्वकालिक और सार्वभौम होकर सर्वत्र व्याप्त हो गया है। उनकी काव्य कृतियाँ अपनी प्रभूत भाव सामग्री, अनुपम अभिव्यक्ति पद्धति, समृद्ध भाषा-शैली, प्रचुर कल्पना-सृष्टि, अद्‌भुत वस्तु-विन्यास और उत्कृष्ट कला कौशल के कारण हिन्दी काव्य में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

तुलसीदास मूलतः भक्त और सन्त कोटि के साधक थे। काव्य-रचना के मूल में भी भक्ति और आत्मोद्धार की प्रेरणा ही प्रधान थी—अन्यथा अपने काव्य-प्रणयन को वे 'स्वान्तः सुखाय' क्यों कहते ? रामचरित मानस जैसे विशाल महाकाव्य की रचना करते समय भी कवि तुलसी की अपेक्षा भक्त तुलसी की भावना ही प्रबल रही है। रामचरित मानस को 'राम भगति सुरसरि' कहकर ही वे राम भक्ति के अगाध सिन्धु में प्रवेश कराते हैं। कविता उनका साधन है—साध्य है राम भक्ति। किन्तु अपने साध्य तक पहुँचने के लिए गोस्वामी जी ने जिस साधन को स्वीकार किया उसे इतना पूर्ण और समर्थ बना दिया कि भक्ति और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में उतनी अधिक सफलता किसी अन्य कवि को नहीं मिली।

तुलसीदास मुख्य रूप से प्रबन्धकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं, किन्तु उनकी प्रतिभा का क्षेत्र प्रबन्धात्मकता या कथा कौशल तक ही सीमित नहीं रहा। काव्य के प्रसाधन और समस्त आवश्यक उपकरणों को जुटाने और संवारने में उन्हें अद्‌भुत और अपूर्व सफलता मिली है। काव्य के प्रमुख भेद, प्रबन्ध और मुक्तक माने जाते हैं। इनमें, प्रबन्ध कोटि के कवि अपनी भावुकता तथा

मार्मिकता का परिचय जीवन के अनेक हृदयस्पर्शी, मार्मिक वर्णनों द्वारा प्रस्तुत करते हैं और यथार्थ तथा वास्तविक भाव-भूमि को नहीं छोड़ते। उनका काव्य, जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से रहित कल्पना की ऊँची उड़ान और अतिरंजना की चमत्कार पूर्ण पद्धति पर प्रतिष्ठित नहीं होता। जैसा कि मैंने अभी कहा कि गोस्वामी जी का काव्य मुख्य रूप से प्रबन्ध कोटि का है, अतः प्रबन्ध काव्य के तत्वों के आधार पर उसका विवेचन आवश्यक है। प्रबन्ध काव्य की मूल-भित्ति कथा या वस्तु है—उस कथा या वस्तु का यथोचित विन्यास ही कवि को सफल या असफल बनाता है। यदि कवि महाकाव्य-प्रणयन में लीन हुआ है तो उसे प्रबन्ध की व्यापक परिभाषा को सामने रखना होगा। चरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, प्रकृति-वर्णन, मर्यादा-स्थापन, लोक-संरक्षण और आद्योपान्त कथा का आकर्षण महाकाव्य के लिए नितान्त आवश्यक है। तुलसी के रामचरित मानस में हम इन सभी तत्वों की जैसी परिपूर्णता देखते हैं, वैसी हिन्दी के किसी दूसरे महाकाव्य में नहीं। रामचरित मानस कथा-कौशल की दृष्टि से इतना पुष्ट है कि उसका प्रचार और प्रसार अपने मूलाधार ग्रन्थों से भी कई गुना अधिक है। (रामचरित मानस की कथा को तुलसी ने जिस रूप में पल्लवित किया है, उसका रूप ही कुछ निराला है।) बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा अन्य संस्कृत-ग्रन्थों से कथा का स्रोत ग्रहण करके भी तुलसी ने उसे अपनी उद्भावना शक्ति से एकदम नवीन कलेवर दे दिया है। 'श्रुति सम्मत' और 'नाना पुराणनिगमागमसम्मत' होने पर भी रामचरित मानस की कथा 'तुलसी सम्मत' अधिक है और इसी कारण वह बाल्मीकि-रामायण से भी अधिक रोचक तथा आकर्षक है। तुलसी की प्रबन्धात्मक रचनाओं में तीन का मुख्य स्थान है—रामचरित मानस, पार्वती मंगल, और जानकी मंगल। प्रबन्ध अथवा वस्तु विन्यास की दृष्टि से पार्वती मंगल प्रधान है। 'मानस' तुलसी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। कथा की संघटना के साथ लोक मर्यादा और लोक कल्याण की भावना को प्रबुद्ध रखते हुए रचना में लीन तुलसी को जैसी सफलता इस महाकाव्य में मिली है, वैसी किसी अन्य कवि को नहीं मिली। रामचरित मानस के कवि का ध्यान मुख्य रूप से नेता या नायक श्री राम पर है—नेता के आश्रय से दूसरी वस्तु पुष्ट हुई है रस। नेता और रस की विवृति ही जैसे मानस का अभीष्ट है। तुलसी की कथावस्तु इतनी सुश्रृंखल और सन्तुलित रही है कि वह राम महिमा के विस्तार के साथ जन-साधारण के अतुलनीय मनोरंजन, अपार आकर्षण और अमित कल्याण साधन करने में समर्थ होती है।

चरित्र चित्रण को प्रबन्ध-काव्य का दूसरा गुण कहा जाता है। तुलसी ने चरित्रों का विकास अपने विशिष्ट सांस्कृतिक धरातल पर किया है। चरित्र चित्रण का उत्कर्ष यही है कि उससे पात्रों के वास्तविक स्वभाव और कर्म का यथार्थ परिचय प्राप्त हो सके। रामायण में तुलसी ने सात्विक, राजस और तामस तीनों कोटियों के पात्रों का समावेश करके दो प्रकार के चरित्रों का पृथक् पृथक् विभाग कर दिया है— एक तो वे चरित्र हैं जो सर्वथा आदर्श कहे जा सकते हैं और दूसरे सामान्य। राम, सीता, भरत, हनुमान आदि आदर्श कोटि के उदात्त चरित्र हैं और दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, कैकेयी आदि सामान्य स्वभाव के। रामचरित मानस के अतिरिक्त कवितावली और गीतावली में भी इन चरित्रों के विकास का इसी रूप में ध्यान रखा है। इन चरित्रों के विकास और उत्कर्ष के लिए तुलसी ने बड़ी कुशलता से अपने काव्य में सुन्दर सम्वादों की अवतारणा की है और उनके द्वारा काव्य की शैली को ही रोचक नहीं बनाया अपितु उसमें नाटकीयता का सुन्दर पुट भी दे दिया है। तुलसी के सम्वाद विदग्धता, स्वाभाविकता, स्पष्टता और नाटकीयता की दृष्टि से इतने सरस और सुन्दर बन पड़े हैं कि पाठक उनके काव्य कौशल पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। उदाहरण के लिए परशुराम-लक्ष्मण सम्वाद, मन्थरा-कैकेयी सम्वाद, रावण-अंगद सम्वाद आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है।

तुलसी ने अपनी प्रतिभा से राम कथा के मार्मिक स्थलों को विशेष रूप से चुना है जो सहृदय की सम्वेदनाओं को प्रबुद्ध कर उनमें लीन करने की क्षमता रखते हैं। तुलसी की भावुकता का परिचय इन मार्मिक प्रसंगों के पढ़ने से स्वतः हो जाता है। मानव प्रकृति के विविध रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामञ्जस्य देखकर उनकी सूझबूझ तथा अन्तः प्रवेशिनी सूक्ष्म दृष्टि पर विस्मय विमुग्ध होना पड़ता है। उनके काव्य का कौशल ही यह है कि उनके द्वारा वर्णित हास्य-रुदन, राग-विराग, आनन्द-उत्साह, हर्ष-शोक को हम अपना ही समझ कर उनके साथ पूरा पूरा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके आत्म विभोर हो उठते हैं। कवितावली-रामायण में वर्णित तुलसी का राम-वन-गमन प्रसंग किसे आनन्दाश्रु की धारा में निमज्जित न कर देगा।

"घर ते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग में पग द्वै
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिर पूछति है चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अतिचारु चलीं जल च्वै।"

जिस राम को राजगद्दी छोड़ते समय रंच मात्र भी क्लेश नहीं हुआ, उसे ही तिय की आतुरता देखकर आँसू घेर लेंगे—यह कवि की सुन्दर उद्भावना नहीं तो क्या है ? तुलसी ने अपने काव्य कौशल से एक ही भाव को अनेक रूप देकर तो सचमुच ही अपनी विलक्षण काव्य क्षमता का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए रामायण में वर्णित सीता वियोग और गीतावली का सीता वियोग भिन्न प्रकार का है और वह दोनों ही स्थितियों में बड़ा मोहक और स्वाभाविक है। अरण्य कांड में राम कहते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृग नैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रवीना।

यह कहकर राम अपने साधारण मनुष्य रूप का परिचय देते हैं। सीता का वियोग हनुमान द्वारा गीतावली में वर्णित है। हनुमान कहते हैं—

चित दे सुनहु राम करुनानिधि मानौं कछु पै सकौं कहि हौं न,
लोचन नीर कृपन के धन ज्यों रहत निरन्तर लोचन कोन।

रामायण में तुलसी ने प्रायः सभी भावों का वर्णन प्रस्तुत किया है। शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्‌भुत, शान्त सभी रस अपने भाव-विभाव और संचारी भावों के साथ तुलसी के काव्य में बिखरे पड़े हैं। अपने भावों की विशद व्यंजना के लिए कवि तुलसी ने भी उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सहज अलंकारों का समावेश किया है। किन्तु तुलसी के काव्य में अलंकार आरोपित या कृत्रिम नहीं वरन् नैसर्गिक और अनिवार्य उपकरण बनकर ही आए हैं। रूप वर्णन के लिए तो तुलसी ने उपमा और उत्प्रेक्षाओं का ऐसा समीचीन प्रयोग किया है कि उससे प्रस्तुत रूप विधान एकदम नेत्रों के सामने सजीव हो उठता है। लंका में राम-रावण युद्ध में रक्त की छींटों से लिप्त राम का सौन्दर्य कवितावली में तुलसी ने उत्प्रेक्षा द्वारा कहा है—

सोभित छींट छटा निज ते तुलसी प्रभु सौहैं महा छवि छूटी।
मानौ मरक्कत सैल विसाल में फैलि चली वर वीरबहूटी।

उन्हीं राम का रूप गीतावली में कामदेव के समान वर्णित हुआ है—'राजत राम काम सत सुन्दर।' विनय पत्रिका में तो तुलसी ने प्रायः सभी देवी-देवताओं के रूप, शील, शक्ति का वर्णन किया है और उसमें अलंकारों का जैसा प्रचुर प्रयोग हुआ वह कवि की विद्वत्ता के साथ काव्य कौशल का भी परिचायक है। भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक अलंकार, वस्तुओं के रूप

का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार, गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार तथा क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार—इन चारों ही शैलियों में तुलसी का अलंकार विधान हुआ है, और वह इतनी पूर्णता के साथ हुआ है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है।

तुलसी ने अपने काव्य में बाह्य दृश्य चित्रण भी अनूठे किए हैं। पात्रों की आन्तरिक भावनाओं की विवृति के साथ उन्होंने बाह्य रूप-सौन्दर्य तथा अंग-सौष्ठव का बड़ा ही सर्वांगपूर्ण चित्र अंकित किया है। प्रकृति चित्रण में भी कवि की वृत्तियाँ पूर्ण रूप से रमी हैं। शुद्ध आलम्बन बनाकर तुलसी ने प्रकृति वर्णन नहीं किया किन्तु जिस रूप में भी उसे रखा है, वह काव्य कौशल की कसौटी पर खरा है। तुलसी कथांश को छोड़कर प्रकृति के रूप पर मुग्ध होने वाले कवि नहीं है किन्तु कथा-प्रसंग के साथ प्रकृति-छटा में उनकी चित्त-वृत्ति पूर्ण रूप से रमती है। तुलसी की वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन इस कथन के प्रमाण हैं कि उन्होंने कथा और नीति दोनों का सम्बन्ध प्रकृति वर्णन से रखकर अपनी शैली का निर्वाह किया है। संश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण की शैली से भी तुलसी पूर्ण परिचित थे और वे इसमें अच्छा कौशल दिखा सके। उनका अधिकांश प्रकृति-वर्णन वस्तुनिष्ठ है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी तुलसी की अद्‌भुत क्षमता का परिचय हमें उनकी काव्यकृतियों में मिलता है। अवधी और ब्रजभाषा दोनों का अगाध ज्ञान और प्रकाण्ड पाण्डित्य रामचरित मानस, कवितावली, विनयपत्रिका और गीतावली में देखा जा सकता है। यों कहने को तुलसी ने अपनी भाषा को गँवारू कहा है, किन्तु अवधी भाषा का जैसा प्रांजल, परिमार्जित और प्रवाह-पूर्ण प्रयोग वे कर सके, दूसरा कोई कवि न तो उनसे पहले कर पाया था और न बाद में ही कर सका। अवधी भाषा के पूर्ण ज्ञान के लिए तुलसी साहित्य पर्याप्त है और उनका शब्द भण्डार भी इतना व्यापक है कि कुछ और पढ़ने की आवश्यकता ही शेष नहीं रहती। चलती और सरस ब्रजभाषा का नमूना उनकी कवितावली और गीतावली में देखा जा सकता है। ब्रजभाषा के शब्दों का नैसर्गिक प्रयोग तुलसी को सिद्ध था, वे इतने सहज रूप में ब्रजभाषा लिख गए हैं कि उसे पढ़ कर उनका अवधवासी या काशीवासी होना हमें आश्चर्य में डाल देता है। ब्रजभाषा के सीधे साधे शब्दों का एक उदाहरण सुनिए—

राम सों बड़ो है कौन, मो सों कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन, मो सों कौन खोटो।

इसमें बड़ो, छोटो, खरो, खोटो कितने सरल और सरस शब्द हैं। गीतावली में भरत कहते हैं–"जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं। तो जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं।" कवितावली तो उनके ब्रजभाषा सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। तुलसी संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे--अवधी उन्हें सिद्ध थी, ब्रजभाषा को उन्होंने रमा लिया था। उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग वे इतनी सजीव शैली से कर गए हैं जैसे इन भाषाओं को भी उन्होंने खूब सुन कर सीखा था। बहुश्रुत होने का ही फल यह है कि उन्हें भाषा का पूर्णाधिकार प्राप्त हो सका।

शैली की दृष्टि से उन्होंने प्रबन्ध तथा मुक्तक, दोनों प्रकार की पद्धतियों में काव्य रचना की। अतः दोनों प्रकार की अभिव्यक्ति उनके काव्य में है। तुलसी की प्रारम्भिक कृतियों की शैली में प्रौढ़ता नहीं है। 'रामलला नहछू', 'वैराग्य सन्दीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न' आदि रचनाएं भाषा तथा भाव, दोनों दृष्टियों से हल्की हैं, अतः उनकी शैलियाँ भी अप्रौढ़ हैं। किन्तु बाद की रचनाओं में शैली की विविधता तथा प्रांजलता देखकर कहना पड़ता है कि तुलसी के समान शैली निर्माता और शैली ज्ञाता दूसरा कवि नहीं हुआ। किसी कवि ने इतनी विविध शैलियों में कविता नहीं की जितनी शैलियों में तुलसी ने की। तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य, उसकी ऋजुता, उसकी सुबोधता, सरलता, चारुता, रमणीयता, उसका लालित्य और उसका प्रवाह है। रामचरित मानस, विनयपत्रिका और कवितावली में उनकी शैली का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। तुलसी की विशेषता यह है कि प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। मंगलाचार के लिए स्त्रियों की गीत शैली पर उन्होंने जानकी मंगल, पार्वती मंगल लिखे; दोहे की शैली पर दोहावली लिखी; कवित्त-सवैये की शैली पर कवितावली लिखी; पदों की शैली पर गीतावली लिखी। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी ने अपने काव्य को शैली, भाषा तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से परिपूर्ण और सर्वांगीण बनाकर प्रस्तुत किया। शैली में शिल्प और कला को जिस सुन्दर रूप में कवि ने संजोया है, वह उसकी कला का अद्भुत कौशल है।

संक्षेप में, तुलसी निसर्ग सिद्ध प्रतिभा वाले क्रान्तदर्शी कवि थे। स्वान्तः सुखाय काव्य-रचना में लीन होने पर भी कला के समस्त बाह्य उपकरण उनकी

कृतियों में इतने प्रचुर परिमाण में समाविष्ट हो गये हैं कि उनकी समता हिन्दी का दूसरा कोई कवि नहीं कर सकता। भाव, भाषा, शैली, अलंकार, रस, पदलालित्य, कथा-वस्तु-विन्यास, सभी कुछ शिल्पकारी के उस उच्च स्तर पर एकत्र हुआ है कि वहाँ तक पहुँचना दूसरों के लिए कठिन है। तुलसी हिन्दी कविता-कानन का सबसे बड़ा वृक्ष है—उस वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं के काव्य-कौशल की चारुता और रमणीयता चारों ओर बिखरी पड़ती है।

चरित्र चित्रण—

भरत—

अगम सनेह भरत रघुबर को
जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को।
मिलन-प्रीति किमि जाइ बखानी
कवि कुल अगम करम मन वानी।

दशरथ की दुविधा—

राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी
तनु परिहरेउ प्रेम पनु लागी
रामहिं कहेउ राउ वन जाना
कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रयाना।

व्यंजना

चारु चरन नख लेखति धरनी,
नूपुर मुखर मधुर कवि वरनी,
मनहुँ प्रेमबस विनती करहीं
हमहि सीय पद जनि परिहरहीं।

अलंकार

सन्त-असन्त की व्याख्या

बन्दउँ सन्त असज्जन चरना
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं
मिलत एक दुख दारुन देहीं।

अर्थान्तरन्यास

नारी की रहस्यपूर्ण प्रवृत्ति

निज प्रतिबिम्बु बरुकु गहि जाई
जानि न जाइ नारि गति भाई।

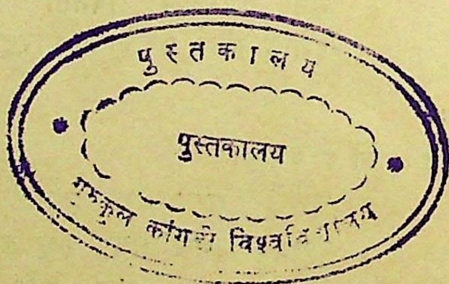
प्रश्नोत्तर

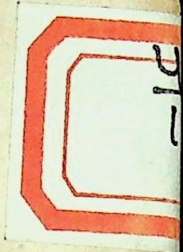
काह न पावकु जारि सके का न समुद्र समाय
का न करै अबला प्रबल जेहि जग काल न खाय।

भाषा

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि
कहत लखन सन रामु हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं
मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं।









पब्लिकेशन्स डिवीज़न
सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय,
भारत सरकार

